कर्म के उत्तर भेदों में परिगणित किया गया है। चक्षु-दर्शनावरण आदि चारों दर्शनावरणी कर्म दर्शन-शक्ति की प्राप्ति में बाधक होते हैं।

दर्शनावरण कर्म-बन्ध के कारण- जिन कारणों से ज्ञानावरण कर्म का बन्ध होता है, दर्शनावरण कर्म भी उन्हीं साधनों से बँधता है। अन्तर केवल इतना है कि यहाँ ज्ञान और ज्ञान के साधन न होकर, दर्शन और दर्शन के साधनों के प्रति वैसा व्यवहार होने पर, दर्शनावरण कर्म बन्धता है।

३. वेदनीय कर्म- जो कर्म-जीव को सुख या दुःख का अनुभव कराता है, वह वेदनीय कर्म है । यह दो प्रकार का होता है– १. साता वेदनीय एवं २. असाता वेदनीय । जिस कर्म के उदय से प्राणी को अनुकूल विषयों के संयोग से सुख का अनुभव होता है, वह साता वेदनीय कर्म है। जिस कर्म के उदय से प्रतिकूल विषयों का संयोग होने पर दुःख का संवेदन होता है वह असाता वेदनीय कर्म है। वेदनीय कर्म की तुलना मधु से लिप्त तलवार से की गयी है। जिस प्रकार शहद से लिप्त तलवार की धार को चाटने से पहले अल्प-सुख और फिर अधिक दुःख होता है, वैसे ही पौद्गलिक सुख में दुःखों की अधिकता होती है। मधु को चाटने के समान, साता-वेदनीय है और जीभ कटने की तरह असाता-वेदनीय है।

वेदनीय कर्म-बन्ध के कारण- सभी प्राणियों पर अनुकम्पा रखने से, व्रतियों की सेवा करने से, दान देने से, हृदय में शान्ति और पवित्रता रखने से, साधुओं या श्रावकों के व्रत पालन करने से, कषायों को वश में रखने से साता-वेदनीय कर्म का बन्ध होता है।

इसके विपरीत, स्व-पर को दुःख देने से, शोकमग्न रहने से, किसी को पीड़ा पहुँचाने आदि आचरण करने से दुःख के कारणभूत असाता वेदनीय कर्म का बन्ध होता है। असाता वेदनीय कर्म के फलस्वरूप देह सदा रोग-पीड़ित रहती है तथा बुद्धि और शुभ क्रियाएँ नष्ट हो जाती हैं। यह प्राणी अपने हित के उद्योग में तत्पर नहीं हो सकता।

४. मोहनीय कर्म - जो कर्म आत्मा को मोहित करता है, मूढ़ बनाता है, वह मोहनीय कर्म है। इस कर्म के कारण जीव मोह ग्रस्त होकर संसार में भटकता है। मोहनीय कर्म संसार का मूल है। इसलिए इसे कर्मों का राजा कहा गया है। समस्त दुःखों की प्राप्ति मोहनीय कर्म से ही होती है। इसीलिए इसे अरि या शत्रु भी कहते हैं। अन्य सभी कर्म मोहनीय के अधीन हैं। मोहनीय कर्म राजा है, तो शेष कर्म प्रजा। जैसे राजा के अभाव में प्रजा कोई कार्य नहीं कर

Scanned by CamScanner

सकती, वैसे ही मोहनीय के अभाव में अन्य कर्म अपने कार्य में असमर्थ रहते हैं। यह आत्मा के वीतराग-भाव तथा शुद्ध स्वरूप को विकृत करता है, जिससे आत्मा राग-द्वेषादि विकारों से ग्रस्त हो जाता है। यह कर्म स्वपर-विवेक एवं स्वरूप-रमण में बाधा डालता है।

इस कर्म की तुलना मदिरापान से की गयी है। जैसे मदिरा पीने से मानव परवश हो जाता है, उसे अपने तथा पर के स्वरूप का भान नहीं रहता, वह हिताहित के विवेक से शून्य हो जाता है, वैसे ही मोहनीय कर्म के उदय से जीव को तत्त्व-अतत्त्व का भेद-विज्ञान नहीं हो पाता। वह संसार के विकारों में उलझ जाता है।

मोहनीय कर्म दो प्रकार का है— दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय

(क) दर्शन मोहनीय - दर्शन मोहनीय कर्म आत्मा के दर्शन गुण/श्रद्धान को विकार ग्रस्त बना देता है। इस कर्म के उदय से व्यक्ति अपने सम्यक् स्वरूप को भलीभाँति पहिचान नहीं पाता है। जैसे-मदिरा पीने से व्यक्ति की बुद्धि मूर्च्छित हो जाती है, वैसे ही इस कर्म के उदय से आत्मा का विवेक विलुप्त हो जाता है। वह हित-अहित, निज-पर का भेद नहीं कर पाता। परिणामतः वह दिग्मूढ़ बनकर घातक इन्द्रिय विषयों को ही प्रिय मानने लगता है। शरीर, स्त्री, धन, संतति जैसी पर वस्तुओं के प्रति घोर ममता का शिकार हो जाता है। वह सांसारिक मोहजाल में पड़कर मोक्ष लक्ष्य से दूर हो जाता है।

दर्शन मोहनीय के तीन भेद हैं- १. मिथ्यात्व, २. सम्यक्-मिथ्यात्व, ३. सम्यक्त्व प्रकृति ।

१. मिथ्यात्व कर्म - जो कर्म तत्त्व में श्रद्धा उत्पन्न नहीं होने देता और विपरीत श्रद्धा उत्पन्न कराता है, वह मिथ्यात्व कर्म है। इस कर्म के उदय से जीव की वह मूढ़ अवस्था उत्पन्न हो जाती है, जिससे वस्तु के वास्तविक स्वरूप के ग्रहण की योग्यता सर्वथा तिरोहित हो जाती है।

२. सम्यक्-मिथ्यात्व- तत्त्व और अतत्त्व दोनों में युगपत् श्रद्धान उत्पन्न करनेवाला कर्म सम्यक्-मिथ्यात्व कर्म कहलाता है। इस कर्म के उदय में सम्यक् और मिथ्यारूप मिश्रित श्रद्धान उत्पन्न होता है। इसलिए इसे मिश्र मोहनी कर्म भी कहते हैं।

३. सम्यक्त्व प्रकृति - जो कर्म सम्यक्त्व को तो नहीं रोकता, किन्तु उसमें चल, मलिन और अगाढ़ दोष उत्पन्न करता है, वह सम्यक्त्व मोहनीय कर्म है।

इस प्रकार मिथ्यात्व-प्रकृति अश्रद्धा रूप होती है तथा सम्यक्-

Scanned by CamScanner

मिथ्यात्व प्रकृति श्रद्धा और अश्रद्धा से मिश्रित होती है तथा सम्यक्त्व-प्रकृति से श्रद्धा में शिथिलता या अस्थिरता होती है, जिसके कारण चल, मलिन और अगाढ़ ये तीन दोष उत्पन्न होते हैं। यह प्रकृति सम्यक्त्व का घात तो नहीं करती, परन्तु शंका आदि दोषों को उत्पन्न करती है।

(ख) चारित्र मोहनीय - चारित्र मोहनीय कर्म आत्मा के चारित्र-गुण को विकृत कर देता है। यह कर्म जीव की सन्मार्ग यात्रा में बाधा उपस्थित करता है। इस कर्म के उदय से जीव के आचरण में विकार आ जाता है। वह अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह जैसे आदर्शों को अपना नहीं पाता। यह कर्म आत्मा को राग-द्वेष आदि विकारों में उलझाकर स्वरूपरमण में बाधा डालता है। कषाय-वेदनीय और नोकषाय-वेदनीय के भेद से चारित्र मोहनीय के भी दो भेद हैं। कषाय-वेदनीय मुख्यतः चार प्रकार का है-

१. क्रोध, २. मान, ३. माया और ४. लोभ।

क्रोध आदि चारों कषाय तीव्रता व मन्दता की दृष्टि से चार-चार प्रकार की होती हैं- अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान तथा संज्वलन। इस प्रकार कषाय वेदनीय के कुल सोलह भेद हैं, जिनके उदय से क्रोधादिक भाव होते हैं।

(अ) अनन्तानुबन्धी - अनन्तानुबन्धी के प्रभाव से जीव को अनंतकाल तक भव-भ्रमण करना पड़ता है। इसके उदय में सम्यक्त्व और चारित्र दोनों ही नहीं हो पाते।

(ब) अप्रत्याख्यान- प्रत्याख्यान का अर्थ है– त्याग। जिस कषाय के उदय से ईषत् त्याग अर्थात् देशसंयम भी ग्रहण न किया जा सके, वह अप्रत्याख्यान कषाय कहलाती है।

(स) प्रत्याख्यान- जिस कषाय के उदय से सकल-संयम को ग्रहण न किया जा सके वह प्रत्याख्यान कषाय है।

(द) सञ्ज्वलन- जिस कषाय के उदय से सकल-संयम तो हो जाए, किन्तु आत्म-स्वरूप में स्थिरता रूप यथाख्यात चारित्र न हो, उसे सञ्ज्वलन कषाय कहते हैं।

नोकषाय वेदनीय - जिनका उदय कषायों के साथ होता है या जो कषायों से प्रेरित होती है, वह नोकषाय है। इन्हें अकषाय भी कहते हैं। नोकषाय या अकषाय का तात्पर्य कषायों का अभाव नहीं, अपितु ईषत् कषाय है। इनके

Scanned by CamScanner

नौ भेद हैं- हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद तथा नपुंसकवेद। इनका अर्थ इनके नामों से ही स्पष्ट है।

इस प्रकार दर्शन-मोहनीय के तीन तथा कषाय-वेदनीय के सोलह और नोकषाय वेदनीय के नौ मिलकर मोहनीय कर्म के कुल अट्ठाईस भेद हैं।

मोहनीय कर्म के बन्ध का कारण - सत्यमार्ग की अवहेलना करने से और असत्य मार्ग का पोषण करने से तथा आचार्य, उपाध्याय, गुरु, साधु-संघ आदि सत्य-पोषक आदर्शों का तिरस्कार करने से दर्शन-मोहनीय कर्म का बन्ध होता है, जिसके फलस्वरूप जीव अनन्त संसार का पात्र बनता रहता है।

स्वयं पाप करने से तथा दूसरों को कराने से, तपस्वियों की निन्दा करने से, धार्मिक कार्यों में विघ्न उपस्थित करने से, मद्य-माँस आदि का सेवन करने और कराने से, निर्दोष व्यक्तियों में दूषण लगाने से चारित्र मोहनीय कर्म का बन्ध होता है।

आयु कर्म - आयु कर्म के चार भेद है— देवायु, मनुष्यायु, तिर्यञ्चायु और नरकायु।

जीव को किसी विवक्षित शरीर में टिके रहने की अवधि का नाम आयु है। इस आयु का निमित्तभूत कर्म 'आयु कर्म' कहलाता है। जीवों के जीवन की अवधि का नियामक आयु है। इस कर्म के अस्तित्व से प्राणी जीवित रहता है और क्षय होने पर मृत्यु के मुख में जाता है। मृत्यु का कोई देवता या उस जैसी कोई अन्य शक्ति नहीं है, अपितु आयु कर्म के सद्भाव और क्षय पर ही जन्म और मृत्यु अवलम्बित है। इस कर्म की तुलना कारागार से की गयी है। जैसे न्यायाधीश अपराधी को अपराध के अनुसार नियत समय के लिए कैद में डाल देता है, अपराधी की इच्छा होने पर भी वह अपनी अवधि को पूर्ण किये बिना मुक्त नहीं हो सकता, वैसे ही आयु कर्म के कारण जीव देह-मुक्त नहीं हो सकता। आयु कर्म का कार्य सुख-दुःख देना नहीं है, किन्तु निश्चित समय तक किसी एक भव में रोके रहना मात्र है।

आयु दो प्रकार की होती है— अपवर्तनीय और अनपवर्तनीय।

कारण प्राप्त होने पर जिस आयु की काल-मर्यादा में कमी हो सके, उसे अपवर्तनीय आयु कहते हैं तथा बड़े-बड़े कारण आने पर भी निर्धारित आयु की काल-मर्यादा एक क्षण को भी कम न हो, उसे अनपवर्तनीय आयु कहते हैं। अपवर्तनीय आयु विष-भक्षण, वेदना, रक्त-क्षय, शस्त्र-घात, पर्वत से पतन आदि निमित्तों के मिलने से अपनी अवधि से पूर्व ही समाप्त हो सकती है। इसे ही

Scanned by CamScanner